ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 135-137**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- II, Issues-40, YEAR- April-June 2026

वर्णाश्रम व्यवस्था : उद्देश्य एवं प्रासंगिकता

रविन्द्र प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर– समाजशास्त्र विभाग, के.बी.पी. जी. कालेज, मीरजापुर (उ0प्र0) भारत

Received-06.04.2026, Revised-13.04.2026, Accepted-20.05.2026, E-mail:ravindrapratap221008@gmail.com

सारांशः प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था तत्कालीन समाज संगठन तथा व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। आज भी उसके मूल भूत सैद्धान्तिक आधार समाज के लिए उतने ही उपयोगी हैं। व्यक्ति के गुणों के आधार पर समाज को चार वर्णों तथा प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के चार लक्ष्य (पुरुषार्थ) निर्धारित कर इन्हें हस्तगत करने हेतु चार भागों (आश्रम) में विभाजन व्यवस्था की विशेषता है।

कुंजीभूत शब्द– प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था, सैद्धान्तिक आधार, पुरुषार्थ, भौतिक, आध्यात्मिक उत्थान, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास ।

प्रस्तावना– वर्णाश्रम व्यवस्था प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ थी, जिसकी विशिष्टता मानव जीवन के चार महत्वपूर्ण लक्ष्यों (पुरुषार्थ) की घोषणा भी थी। सर्व प्रथम मनीषियों ने मानव के व्यक्तिगत भौतिक, आध्यात्मिक उत्थान का समाज हित से ताल–मेल बिठाते हुए क्रमशः धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चार पुरुषार्थों की घोषणा की। इन पुरुषार्थों को हस्तगत करने के लिए उसके जीवन को 25–25 वर्षों के चार काल खण्डों में विभाजित कर चार आश्रमों– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास की रचना की गई। पुनः सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने एवं सामाजिक प्रगति को सुनिश्चित करने हेतु चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की व्यवस्था की गयी।

वर्ण व्यवस्था वैदिक काल में शुद्ध रूप से गुण और कर्म आधारित थी। काल क्रम में यही वर्ण विकृत होकर जन्म आधारित जाति व्यवस्था में बदल गया। ध्यातव्य है कि प्राचीन वर्ण व्यवस्था स्तरीकरण की एक गुण आधारित खुली व्यवस्था थी जो बाद में जन्म आधारित बंद व्यवस्था बन गयी। समाज में आई इस विकृति के बीज आश्रम व्यवस्था और पुरुषार्थ में आए विकारों में निहित हैं। वैदिक काल के उपरान्त भारतीय समाज जो धर्म को सर्वोपरी और मोक्ष को परम पुरुषार्थ मानता था, में क्रमशः अर्थ और काम की महत्ता बढ़ने लगी। धर्म और मोक्ष पुरुषार्थों के महत्व में कमी के साथ वर्ण और आश्रम की गरिमा कम हो गयी। भौतिकता की ओर अधिक झुकाव का परिणाम था समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद और अनैतिकता।

पद्यतिशास्त्र– प्रस्तुत शोध–पत्र "वर्णाश्रम व्यवस्था : उद्देश्य एवं प्रासंगिकता" द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है जिसमें भारत विद्या शास्त्रीय उपागम को अपनाते हुए प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था के आधारों की विवेचना की गई है। इसमें आधुनिक समाजशास्त्रीय विचारों के साथ–साथ प्राचीन ग्रंथों उपनिषद, गीता तथा स्मृति ग्रंथों का भी सन्दर्भ लिया गया है।

वर्णाश्रम व्यवस्था का उद्देश्य एवं प्रासंगिकता– 'आश्रम' शब्द श्रम धातु से बना है, जिसका तात्पर्य है– श्रम या कोई उद्यम करना। 'आ' उपसर्ग उद्यम को एक विशेष संदर्भ प्रदान करने के लिए जोड़ा गया है। अर्थात एक विशेष आश्रम का संयोजन कोई भी मनमाना कार्य नहीं, वरन विशेष प्रकार के कार्य को करने के लिए किया गया है। मनुस्मृति में जीवन की परिकल्पना सौ वर्षों तक करते हुए (जीवेम शरदः शतम) उसके जीवन को चार समान अवधि खंडों (25–25 वर्ष) विभाजित करते हुए चार आश्रमों में विभक्त किया गया है। ये क्रमशः निम्नवत हैं– ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम, संन्यास आश्रम।

सामान्यतया अपने जीवन में एक व्यक्ति को प्रारम्भिक तीन आश्रमों से गुजरते हुए संन्यास आश्रम में वृद्धावस्था में प्रवेश की परंपरा रही है, किन्तु यह कोई अलंघ्य नियम नहीं है। यथा कठोपनिषद, योग वशिष्ठ और उपनिषदों आदि में पाठक को लगातार यह प्रेरणा देने का प्रयास दिखाई देता है कि यह पांच्य भौतिक संसार असार है और शरीर नश्वर। अतः यथाशीघ्र परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए। ध्यातव्य है कि चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष जीवन के विशिष्ट आश्रमों में रहकर हस्गत करने का विधान है। इनमें चतुर्थ या परम पुरुषार्थ को मोक्ष कहा गया है। इसका संबंध सन्यास आश्रम से है। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि बिना प्रारंभिक 3 पुरुषार्थ धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि के चतुर्थ या परम पुरुषार्थ को हस्तगत नहीं किया जा सकता।

इसका प्रमाण हमें काशी के पंडित मंडन मिश्र की पत्नी भारती द्वारा आदि शंकराचार्य को काम विज्ञान में अल्पज्ञता के कारण पराजय और फिर परकाया प्रवेश के द्वारा मृत राजा की देह में प्रवेश कर काम कलाओं का व्यवहारिक ज्ञान अर्जन के उपरांत ही आदि शंकर की ज्ञान की पूर्णता की स्वीकृति के कथानक में मिलती है, अर्थात धर्म, अर्थ और काम को आयत्त किए बिना मोक्ष का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता।

प्रश्न यह है कि फिर शुकदेव, नारद, हनुमान तथा भीष्म आदि मनीषियों का जीवन जो काम पुरुषार्थ का अतिक्रमण कर अल्प वय में ही मोक्ष प्राप्ति या सन्यास आश्रम की स्वीकृति की ओर अग्रसर हुआ। आज भी विभिन्न अखाड़ा–आश्रमों में ऐसे बाल और युवा सन्यासी दृष्टिगोचर होते हैं, तो क्या इनको मुक्ति हस्तगत नहीं हो सकती ? इस प्रश्न की व्याख्या के लिए पुनर्जन्म की अवधारणा का सहारा लिया गया है। बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।4.5।। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं– हे अर्जुन तेरे और मेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन सब को मैं जानता हूं पर तू नहीं जानता। तात्पर्य यह है कि सनातन मान्यता मे मुक्ति शरीर को नहीं, जीवात्मा को प्राप्त होती है और इस असीम आत्मा का जीवन काल वर्तमान जन्म (शरीर) तक सीमित नहीं है। इसका भूत तथा भविष्य दोनों है।

योग वशिष्ठ के अनुसार मृत्यु और जन्म तो सोने और जागने की तरह हैं। जैसे सुबह सोकर उठने वाले व्यक्ति की सारी देयताएं और निधियां वही रहती हैं, जो रात को सोने वाले व्यक्ति की थी। यह अवधारणा कर्म फल की व्याख्या में भी सहायक है, अर्थात यदि किसी ने अपने पूर्व जन्मो में धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि आश्रमों में रह कर प्राप्त कर लिया है तो उसके संस्कार ऐसे परिपक्व हैं कि वह सीधे संयास आश्रम में प्रवेश कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना का मूलाधार कही जा सकती है। विदित हो कि चार पुरुषार्थों को प्राप्त करने के लिए, मानव जीवन को चार आश्रमों में नियोजित किया गया था। यहां विवाद का विषय यह है कि क्या यह चारों पुरुषार्थ और आश्रम समाज के चारों वर्णों के लिए बनाए गए थे ? या फिर वंचित और दलित की उपाधि प्राप्त शूद्रों के लिए यहां प्रवेश निषेध का बोर्ड लगा हुआ था। इस बात से तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि इन्हे इतिहास की लंबी अवधि मे तमाम सामाजिक

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- II, Issues-40, YEAR- April-June 2026

निर्योग्यताओं का सामना करना पड़ा जिसमें ब्रह्मचर्य आश्रम (गुरुकुल) में रह कर धर्म और अर्थ पुरुषार्थ (विद्या) की प्राप्ति की वंचना से लेकर सन्यास आश्रम के अंतर्गत परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की सिद्धि की अपात्रता और निर्योग्यता शामिल है।

लेकिन उतनी ही निश्चिंता से यह भी कहा जा सकता है कि प्रारंभिक काल में शूद्रों की ऐसी कोई निर्योग्यता नहीं थी। ध्यातव्य है कि तब शूद्र कोई जाति नहीं, वर्ण हुआ करती थी, जो जन्म की बजाए व्यक्ति के कर्म या गुण से तय होती थी। गीताः चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।।4.13।। जन्मना जायते शुद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते। जन्म से सभी शुद्र हुआ करते थे तथा अपने गुणों के आधार पर कर्म का वरण कर विभिन्न वर्णों को प्राप्त होते थे। शास्त्रों में ऐसा आख्यान मिलता है कि एक ही ऋषि की चार संतान हुई और क्रमशः चार वर्णों में विभक्त हो गयीं। वर्ण का सम्बन्ध यदि जन्म से होता तो ऋषि जो स्वयं ब्राह्मण थे, उनकी संतानों को भी ब्राह्मण ही होना चाहिए था। गौरतलब है कि किसी व्यक्ति के गुणों के आधार पर उसके विहित कर्मों और वर्ण का निर्धारण यही गुरु, ब्राह्मण या ऋषि–मुनि करते थे, फिर यह कैसे संभव है कि कोई व्यक्ति जो स्वयं श्रेष्ठ समझे जाने वाले ब्राह्मण वर्ण का होकर स्वयं के पुत्र को शुद्र करार देगा?

इसी दुरूह प्रश्न के साथ वर्ण के जाति बनने या गुण से जन्म के आधार ग्रहण करने की कथा– व्यथा जुड़ी है। इसका समाधान हमें अमेरिकन समाज विज्ञानी सी. राईट मिल्स की अभिजन की आत्म भर्ती (सेल्फ रिक्रूटमेंट आफ इलीट थ्योरी) के सिद्धांत में मिलता है। मिल्स ने अमेरिकी समाज में बड़े व्यवसायी, सेना के अफसर और राजनेताओं मे एक प्रकार की साठ–गांठ देखी। उन्होंने इनमे आपस में रोटी–बेटी का संबंध भी पाया। अमेरिकी समाज के ये अभिजन शीर्ष पदों पर आपसी साठ–गांठ से अपने स्थान को संरक्षित कर देते हैं। कुछ इसी प्रकार की स्थिति प्राचीन भारत के इतिहास में हुई होगी, जिसमें भारतीय समाज के तत्कालीन अभिजन अपने कमतर योग्य संतति के प्रति अपने मोह का संवरण नहीं कर पाए और फिर धीरे–धीरे यह परंपरा ही बन गयी और इस तरह गुण आधारित वर्ण व्यवस्था जन्म आधारित जाति व्यवस्था में बदल गयी।

प्राचीन भारतीय समाज की शिक्षा व्यवस्था का संचालन अरण्य या जंगलों में बसे गुरुकुलों से ही होता था। इन गुरुकुलों के अधिष्ठाता प्रायः सन्यास और यदा–कदा वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश कर चुके जीवन मुक्त (मोक्ष प्राप्त) सन्यासी या ऋषि ही हुआ करते थे। सनातनी सभ्यता के आरंभिक कालों में चारों वर्णों को विद्या प्राप्त करने का सामान्य अधिकार था। ये ऋषि प्रायः 25 वर्ष की अवस्था प्राप्त होने तक शिक्षार्थी को विभिन्न विद्या और कलाओं में प्रशिक्षित करने के प्रयास के साथ उनका लगातार सहज मूल्यांकन भी करते रहते थे। इसी दीर्घकालीन सहज अवलोकन और परीक्षण के उपरांत ये शिक्षार्थी को उसके गुणों एवं योग्यता के अनुरूप उसे वर्ण प्रदान करते थे। चूंकि ये ऋषि स्वयं सन्यास धारण कर समाज के लगाव–दबाव इत्यादि से स्वयं को अलग कर चुके होते थे, अतः आवश्यकता पड़ने पर सहज ही शासक के पुत्र को भी वैश्य या शुद्र अथवा अयोग्य होने की दशा में निम्न सामाजिक स्थिति को धारण करने वाले वर्ण में उनका प्रवेश करा सकते थे।

गुण आधारित स्तरीकरण की एक सामाजिक व्यवस्था जन्म आधारित कैसे बन गयी ? जवाब है शीर्ष से। सर्व प्रथम सन्यास आश्रम मे प्रवेश और मोक्ष प्राप्त (जीवन मुक्त) की पदवी कुछ ऐसे व्यक्तियों को प्राप्त हो गई जो न तो पूर्णतया सन्यासी या वानप्रस्थी बन पाये होंगे और ना ही मोक्षानुभूति की चरम अवस्था को ही प्राप्त किया होगा। निश्चय ही एक ऐसा कच्चा घड़ा जो भय और दबाव रूपी ठेस या ठोकर और लोभ वह मोह रूपी जल की नमी को निर्विकारिता से सहने में सक्षम नहीं था। अर्थात वही सब कुछ जो मिल अपने अभियान के आत्म भार्ती सिद्धांत में अमेरिकी समाज में देखते हैं। साफ है कि सन्यास आश्रम और जीवन मुक्त सन्यासी प्राचीन भारतीय समाज में परिधि से बाहर अरण्य में रहकर भी राजनीत, धर्म और समाज व्यवस्था का केंद्र हुआ करता था।

प्राचीन भारतीय सामाजिक दर्शन निर्विवाद रूप से यह स्वीकारता है कि उच्च स्तर की निष्पक्षता व नैतिकता सामाजिक संबंधों में बंधे हुए गृहस्थ व्यक्ति की नहीं हो सकती और यहीं से सन्यास आश्रम की अवधारणा और मोक्ष को परम पुरुषार्थ मान कर हस्तगत करने का प्रयास की संकल्पना समाजोपयोगी लगने लगती है। मार्क्सवादी चिंतन में भी हमें शोषण मुक्त समाज की स्थापना हेतु एक परिवार विहीन समाज की संकल्पना का दर्शन इसी ओर इशारा करता है, जो काफी अव्यवहारिक है। भारतीय मनीषा ने इस दुरूह समस्या का रचनात्मक समाधान सन्यास और मोक्ष की अवधारणाओं के माध्यम से निकाला। एक ऐसा व्यक्ति जो स्वयं को किसी आदर्श समाज विज्ञानी या शोधार्थी की तरह अपने आप को सभी पक्षपात और पूर्वाग्रहों मनोवैज्ञानिक विकारों या दबाव से मुक्त कर चुका हो, उस पर समाज में एक कुशल श्रम विभाजन तथा स्तरीकरण कर्ता का दायित्व डालने की स्पष्ट सोच थी, जो काफी व्यावहारिक थी।

विगत दिनो तमाम आश्रमों, सन्यासियों, कथा वाचको द्वारा सामाजिक विचलन और भ्रष्टाचार की सनसनीखेज खबरें सामने आई। उनके अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि आज सन्यास आश्रम अपनी मर्यादा खोता जा रहा है। मानव जीवन के लिए निर्धारित चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से सिर्फ दो ही अभीष्ट रह गए हैं, अर्थ और काम। अमेरिकीकरण, पश्चिमीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं ने मोक्ष की संकल्पना को जैसे सामाजिक जीवन से ही बहिष्कृत कर दिया है। उपरोक्त समस्या का एक समाधान सामाजिक जीवन में धर्म और मोक्ष पुरुषार्थों के सही स्वरूप की प्रतिष्ठा और सन्यास आश्रम की मर्यादा की रक्षा और उसकी पुनर्स्थापना हो सकता है।

बॉलीवुड में नेपोटिज्म का आरोप हो या जजों की भर्ती प्रक्रिया में भाई भतीजा वाद का आरोप। सरकारी पदों में भर्ती में भ्रष्टाचार या शिक्षा के प्रचार प्रसार के साथ जातिवाद में वृद्धि हो, हर जगह जे एस मिल द्वारा उठाए गए अभिजन के भ्रष्टाचार की समस्या ही दिखाई पड़ती है। इससे आगे भी आज आम सामाजिक जीवन में नैतिकता के घोर संकट की स्थिति दिखाई देती है। इसका एक समाधान जो मार्क्स देते हैं– राज्य विहीन, परिवार विहीन और व्यक्तिगत संपत्ति विहीन समाज की स्थापना, लेकिन वह यूटोपिया या स्वप्न लोकीय समाज होने के साथ–साथ के अराजकता भी लाएगा, यह बात तमाम समाजशास्त्रीय चिंतन और लेखानों में स्पष्ट हो चुकी है। उपरोक्त समस्या का एक समाधान सामाजिक जीवन में धर्म और मोक्ष पुरुषार्थों के सही स्वरूप की प्रतिष्ठा और सन्यास आश्रम की मर्यादा की रक्षा और उसकी पुनर्स्थापना से हो सकता है। यद्यपि इसे स्वीकारना और व्यवहार में लाना आज के समय में थोड़ा दुरुह सकता है, लेकिन समस्या भी तो दूरूहतर है। आज सामाजिक जीवन में नैतिक पतन ही ज्यादातर समस्याओं का कारण है। चाहे वह भ्रष्टाचार हो या पर्यावरण प्रदूषण। और इस नैतिक पतन का मूल कारण भौतिकवादी दर्शन है। हमें पुनः विचार करना होगा की क्या मानव जीवन का लक्ष्य विशुद्ध भौतिक संसाधनों को एकत्र करना है या उससे ऊपर कुछ नैतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य भी है और इन्हीं लक्ष्यों की पुनर्स्थापना से ही व्यक्ति और समाज के जीवन को सुंदर और स्वच्छ बनाया जा सकता है। इस प्रकार आज भी वर्णाश्रम व्यवस्था का मूल दर्शन पूर्णतः समाज उपयोगी और प्रासंगिक दिखाई देता है।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- II, Issues-40, YEAR- April-June 2026

मुख्य निष्कर्ष– वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय सामाजिक चिंतन की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जिसका मूल उद्देश्य समाज में संतुलन, समन्वय और कार्य–विभाजन स्थापित करना था। इसके प्रारंभिक स्वरूप में वर्ण का निर्धारण जन्म के आधार पर नहीं, बल्कि व्यक्ति के गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर किया जाता था। इस प्रकार यह व्यवस्था लचीली और गतिशील थी, जिसमें व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार सामाजिक भूमिका प्राप्त करने का अवसर मिलता था।

किन्तु समय के साथ यह व्यवस्था विभिन्न ऐतिहासिक और सामाजिक कारणों से विकृत हो गई। सामाजिक असुरक्षा, सत्ता का केंद्रीकरण तथा उच्च वर्गों द्वारा अपने विशेषाधिकारों को बनाए रखने की प्रवृत्ति ने इसे जन्म–आधारित जाति व्यवस्था में परिवर्तित कर दिया। इस प्रक्रिया को समझाने में सी राइट मिल्स का "अभिजन की आत्म–भर्ती सिद्धांत सहायक है, जो बताता है कि अभिजन वर्ग अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए अपने ही समूह के लोगों को उच्च पदों पर बनाए रखने का प्रयास करता है। हालांकि, यह परिवर्तन केवल एक कारण से नहीं, बल्कि अनेक सामाजिक–ऐतिहासिक कारकों के संयुक्त प्रभाव से हुआ।

भारतीय जीवन–दर्शन के चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—व्यक्ति के समग्र विकास के लिए संतुलित मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। वर्तमान वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के दौर में अर्थ और काम की प्रधानता बढ़ी है, जबकि धर्म और मोक्ष जैसे नैतिक एवं आध्यात्मिक आयाम अपेक्षाकृत कमजोर हुए हैं। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन में नैतिक संकट, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, जातिवाद और मूल्य–पतन जैसी समस्याएँ उभरकर सामने आई हैं।

फिर भी, इन समस्याओं का कारण केवल पश्चिमीकरण या भौतिकवाद को मानना एकांगी दृष्टिकोण होगा। सामाजिक संरचनाओं की जटिलता, प्रशासनिक कमजोरियाँ, तथा संस्थागत विफलताएँ भी इसके लिए जिम्मेदार हैं। इसी प्रकार, कार्ल माक्स द्वारा प्रस्तुत समाज–व्यवस्था का वैकल्पिक मॉडल भी सामाजिक असमानताओं को समाप्त करने का एक प्रयास है, जिसे पूर्णतः अव्यावहारिक कहने के बजाय आलोचनात्मक दृष्टि से समझना अधिक उपयुक्त है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वर्णाश्रम व्यवस्था का मूल दर्शन– यदि उसे उसके शुद्ध, गुण–कर्म आधारित, लचीले और समावेशी स्वरूप में पुनः समझा जाएकृआज भी समाज के लिए उपयोगी और प्रासंगिक हो सकता है, किंतु इसकी पुनर्स्थापना आधुनिक मूल्यों जैसे समानता, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार और लोकतंत्र के साथ समन्वय स्थापित करके ही संभव है।

इस संदर्भ में धर्म और मोक्ष पुरुषार्थों के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करना तथा आश्रम व्यवस्था के अनुशासनात्मक पक्ष (विशेषकर संयम, कर्तव्य और आत्म–विकास) को आधुनिक जीवन में समाहित करना आवश्यक है।

अंततः, वर्णाश्रम व्यवस्था का उद्देश्य किसी प्रकार का सामाजिक विभाजन नहीं, बल्कि संतुलित, नैतिक और समरस समाज की स्थापना था। इसलिए इसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है– बशर्ते इसे उसके मूल स्वरूप में समझकर, समकालीन आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्व्याख्यायित किया जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. योगानंद, परमहंस (1917). ईश्वर अर्जुन संवाद : योगानंद सतसंग सोसायटी आफ इंडिया, रांची।
2. शंकराचार्य, आदि (2008). कठोपनिषद : गीता प्रेस गोरखपुर।
3. पटवर्धन, स्मिता (2011). योग दर्शन : तेजस बुक डिपो, लखनऊ।
4. आचार्य, शिवराज (2009). मनु स्मृति : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
5. प्रोफेसर, हुसैन मुजतबा (2014). समाजशास्त्रीय विचारक : ओरिएंटल ब्लैक स्वान लिमिटेड, नई दिल्ली।
6. दोषी, एस. एल. एवं जैन, पी. सी. (2016). प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक : रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

*****